© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 01 | January – March 2018

शिक्षा के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता पर एक विवेचना

रूबी , शोधार्थिनी, इतिहास विभाग , चौधरी चरण सिंह विश्विद्यालय, मेरठ |
डॉ० स्मिता शर्मा , रीडर एवं शोध निर्देशिका इतिहास विभाग , चौधरी चरण सिंह विश्विद्यालय, मेरठ |

सार

वर्तमान की जड़ अतीत में होती है। किसी भी देश का अतीत उसकी वर्तमान और भावी प्रेरणा का मूल स्रोत होता है। प्राचीन भारत की यह विशेषता है कि इसका निर्माण राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में हुआ था। जीवन में प्रायः सभी अंगों में धर्म का प्रधान्य था। भारतीय संस्कृति धर्म की भावनाओं से ओतप्रोत है। हमारे पूर्वजों ने जीवन की जो व्याख्या की तथा अपने कर्तव्यों का जो विश्लेषण किया वह सभी उनके वृहत्तर अध्यात्म ज्ञान की ओर संकेत करता है। उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक वास्तविकता केवल भौगोलिक सीमाओं के अंतर्गत ही बंध कर नहीं रह गई, उन्होंने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और 'सर्वभूत हीते रत: होना ही अपना कर्तव्य समझा। भारत ने केवल भारतीयता का विकास नहीं किया, उसने चिर-मानव को जन्म दिया और मानवता का विकास करना ही उसकी सम्यता का एकमात्र उद्देश्य हो गया। उसके लिए वसुधा कूटुंब थी।

मुख्य शब्द : वैदिक, शिक्षा, वर्तमान, राजनीतिक, सामाजिक इत्यादि ।

प्रस्तावना

राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षैत्रों में धर्म का प्रावधान होने से जीवन में एक आलौकिक विचारधारा का समावेश हुआ। प्राचीन हिंदुओं की राजनीति हिंसा, स्वार्थ पर अवलंबित न होकर प्रेम, सदाचार और परमार्थ पर आधारित थी। व्यक्ति का विकास ही समाज का विकास समझा जाता था। आर्थिक क्षेत्र में भी जीवन की कोमल व पवित्रधार्मिक भावनाएं क्रियाओं का निर्देशन करती थी; यहाँ तक की संपूर्ण भारतीय सामाजिक संगठन मानव की मूल भावनाओं तथा जीवन के सिद्धांतों पर आधारित था। जीवन का उद्देश्य था, एक आदर्श था और उसकी प्राप्ति संसार की सभी भौतिक विभूतियों से उच्चतर समझी जाती थी। प्राचीन भारत की शिक्षा का विकास भी इसी आधार पर हुआ।

आध्यात्मिकता के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

भारत में शिक्षा तथा विज्ञान की खोज केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही नहीं हुई। अपितु वे धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करने का एक क्रमिक प्रयास माने गए। मोक्ष ही जीवन का चरम विकास था। यही कारण है, कि जीवन की संपूर्ण बहुमुखी क्रियाएं धर्म के मार्ग पर चलकर ही अपने एकमात्र गंतव्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर हुई। भारत के संपूर्ण साहित्य, विज्ञान और कला का सृजन ही उसका अभीष्ट पर पहुंचने का प्रयास है। प्राचीन भारतीय साहित्य एक प्रकार से धर्म का वाहन है। जैसा कि मैकडोनल ने कहा है कि, “प्राचीनतम और वैदिक काव्य के सृजन-काल से ही हम भारतीय साहित्य पर एक प्रकार से लगभग एक हजार वर्ष तक धार्मिक छाप लगी हुई पाते हैं। यहाँ तक कि वैदिक काल के अंतिम ग्रंथ जिन्हें हम धार्मिक नहीं कह सकते, अपना धर्म प्रचार का उद्देश्य रखते हैं। यह वास्तव में 'वैदिक' शब्द में प्रकट होता है क्योंकि वेद का अर्थ ज्ञान होता है तथा संपूर्ण पवित्र ज्ञान का साहित्य की शाखा के रूप में बोध कराता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का विकास भी भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुरूप ही हुआ है। जीवन तथा संसार की क्षणभंगुरता का अनुमान तथा मृत्यु एवं भौतिक सुखों की सारहीनता के भावों ने एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान किया और वस्तुतः संपूर्ण शिक्षा परंपरा इन्हीं सिद्धांतों पर विकसित हुई। यही कारण था कि भारतीय ऋषियों ने एक अदृश्य जगत और आध्यात्मिक सत्ता के संगीत गाये और अपने संपूर्ण जीवन को भी उसी के अनुरूप ढाला। इस भौतिक जगत को भी कभी गंभीरता पूर्वक नहीं ले सके और उनकी सभी प्रवृतियां विकास की ओर न होकर आंतरिक जगत के सर्जन और विकास में लग गई। यद्यपि मृत्यु उनके भय का कारण नहीं थी तथापि मृत्यु तथा संसार के आवागमन से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने एक अमर और स्थाई जीवन की कल्पना की। जगत मभिथ्या लगा और जीवन का एक मात्र सत्य प्रतीत हुआ जीवात्मा का परमात्मा में विलीनीकरण। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य ही 'चित्त वृत्ति निरोध' हो गया, क्योंकि इसी के द्वारा उन्होंने इस एकीकरण की कल्पना की थी।

नैतिकता के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

प्राचीन काल में विद्यार्थी इस जगत के संपूर्ण विप्लव और विद्रोह से परे प्रकृति की रमणीक गोद में अपने गुरु के चरणों में बैठकर जीवन की समस्याओं का श्रवण, मनन और चिंतन करता था। पर्वत की चोटी पर पड़ी हुई प्रथम हिम कणिकाओं की भांति उसका जीवन पवित्र था। जीवन उसके लिए प्रयोगशाला था।वह केवल

पुस्तकीय शब्द ज्ञान ही प्राप्त नहीं करता था, अपितु बहुधा जनसमूह के संपर्क में आकर भी जगत व समाज का व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध करता था। विद्यार्थी का गुरु गृह पर रहना तथा उसकी सेवा करना अनूठी भारतीय परंपरा है। इस प्रकार गुरु के निकटतम संपर्क में आने से विद्यार्थी के अंदर स्वभाविक रूप से गुरु के ही गुणों का समावेश हो जाता था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए यह अनिवार्य था, क्योंकि गुरु ही उन आदर्शों, परंपराओं तथा सामाजिक नीतियों का प्रतीक था जिसके मध्य में रहकर विद्यार्थी का पालन पोषण होता था। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी का गुरु के पास निकटतम संपर्क संपूर्ण सामाजिक परंपराओं से विद्यार्थियों का साक्षात्कार करा देता था।

सामाजिक क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

इसके अतिरिक्त भारतीय शिक्षा प्रणाली की विशेषता यह थी कि शिक्षा जीवनोपयोगी थी। गुरु गृह में रहते हुए विद्यार्थी समाज के संपर्क में आता था। गुरु के लिए इंधन व पानी लाना तथा अन्य गृह कार्य को करना उसका कर्तव्य समझा जाता था। इस प्रकार वह न केवल गृहस्थ होने का शिक्षण पाता था अपितु, धर्म का गौरव पाठ तथा सेवा का पदार्थ पाठ भी पढता था। गुरु की गायों को चराने तथा अन्य प्रकार से गुरु की सेवा करने से एक आध्यात्मिक लाभ भी विद्यार्थियों को होता था। विनय तथा अनुशासन की समस्या जिसने वर्तमान शिक्षा क्षेत्र को चुनौती सी दे रखी है। स्वतः ही समाप्त हो जाती थी और साथ ही साथ विद्यार्थी कुछ जीवन उपयोगी उद्यम, जैसे पशुपालन, कृषि तथा डेयरी फार्म इत्यादि में शिक्षण भी पा लेता था। छांदोग्य उपनिषद में महासंत सत्यकाम की कथा आती है। जो विद्यार्थी जीवन में गुरु की गायों का पालन करते थे और जिनके निरीक्षण में गायों की संख्या चार सौ से एक हजार तक हो गई थी. इसी प्रकार वृहदारण्यक में भी हमें ऋषि याज्ञवल्क्य की गाथा मिलती है. जिन्हें राजा जनक ने एक हजार गायों का दान दिया जो उनके महान ज्ञान का पारितोषिक था। इससे प्रमाणित होता है कि शिक्षा कंवल सिद्धांत की नहीं थी, अपितु जीवन की वास्तविकताओं से इसका संबंध था। ऋग्वेद में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि एक ऋषि स्वयं कवि थे, उनके पिता मिषग अर्थात चिकित्सक तथा उनकी माँ उपलप्रिक्षिणी अर्थात आटा पीसने वाली थी। इस प्रकार उच्चतम शिक्षा में भी श्रम का महत्व था। जीवन की गुढतम समस्याओं को भारतीय ऋषियों ने जीवन के साधारण कार्य क्षेत्रों में सुलझा दिया था। इस पद्धति को वर्तमान काल में क्रिया से ज्ञान प्राप्त करना कहते हैं, और आधुनिक युग में अमेरिका जिसका प्रवर्तक समझा जाता है, भारतीय ऋषियों तथा विद्यार्थियों

का एक प्रमुख शिक्षण सूत्र था। जीवन की प्रयोगशाला शिक्षा परीक्षणों के लिए थी जिस में सफलता प्राप्त कर के प्राचीन शिक्षा शास्त्रियों ने एक परंपरा का निर्माण किया।

इसी प्रकार विद्यार्थियों का जीवन निर्वाह तथा गुरु सेवा से निमित मिक्षान्न प्राप्त करना भी प्रधानतः एक भारतीय परंपरा ही थी। इसका उद्देश्य विद्यार्थी को प्रमुखापेक्षी बनाना नहीं था और यह समाज हित के प्रतिकूल नहीं समझा जाता था। वास्तव में भिक्षा प्रथा प्राचीन काल में सम्मानीय कार्य समझा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इसके शिक्षा महत्व को स्वीकार किया गया है। यह प्रथा विद्यार्थी में त्याग तथा मानवीय गुणों का विकास करती थी। उसके अहंकार का विनाश करके उसे व्यावहारिकजगत के सम्मुख ला खड़ा करती थी। समाज के संपर्क में आने से उसे वास्तविक जीवन का भी ज्ञान होता था। यह विद्यार्थी के लिए स्वावलंबन तथा समाज के प्रति उनके कृतज्ञता का पदार्थ पाठ था।

शिक्षा के क्षेत्र में वेदों की उपयोगिता

समय-समय पर धर्म के अनुरूप परिवर्तित होना, प्राचीन मारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। प्राचीन काल में सम्यता व संस्कृति को बनाने तथा इस में परिवर्तन लाने में राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक कारकों की अपेक्षा धर्म अधिक प्रभावशाली रहा था। उस समय धर्म ने हिंदुओं के संपूर्ण जीवन शैली के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया। उस समय के प्रमुख विचारको ने सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक जीवन के मूलभूत सिद्धांतों को एक व्यापक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया तथा इसे धर्म' की संज्ञा दी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आदर्श, परंपराओं तथा आचारों के संपूर्ण जाल को धर्म के नाम से पुकारा गया। इस प्रकार से धर्म ने हिंदू मानव जाति के राजनीतिक जीवन को आचार संहिता दी तथा उसकी आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया। शिक्षा एक सामाजिक क्रिया है। इसलिए प्राचीन काल में शिक्षा भी धर्म से ही निर्देशित होती थी। धर्म के एक अंग के रूप में विद्या' शताब्दियों तक पढ़ाई जाती रही थी। धर्म ने ही शिक्षा की प्रकृति व स्वरूप का निर्धारण किया था। प्राचीन भारतीय शिक्षा भी वास्तव में धर्म की ही देन है। हिंदू धर्म वस्तुतः सनातन काल से चला आ रहा मानव धर्म है जो मानव मात्र के प्रति कल्याण, कामना, सद्भावना तथा सोहार्द्र से परिपूर्ण है। यह प्राचीन मानव निःसंदेह वैदिक कालीन शिक्षा की अनेक विशेषताएं वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है। वैदिक शिक्षा के उद्देश्य, छात्र अध्यापक संबंध, अनुशासन व्यवस्था, उपनयन संस्कार की अनिवार्यता, समावर्तन उपदेश तथा विनयशीलता, नैतिक चरित्र, कार्य

अनुमव व गुरु श्रद्धा को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समाहित करके अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का क्रमिक विकास एक स्वाभाविक ढंग से हुआ था। उसकी जड़े समाज के अंतराल में थी तथा उसका विकास नैसर्गिक था। उसका उद्देश्य था और कुछ संदेश था। भारत के जंगलों और काननों के मध्य में स्थित प्रकृति की रमणीक सोभा से घिरे हुए विद्या केंद्र सम्यता और संस्कृति के अगाध स्त्रोत थे जहां से मानवता का विकास हुआ। राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांत क्षेत्र में मारत में चाहिए अधिक उन्नति नही की हो, क्योंकि उसका उद्देश्य सांसारिक पदार्थ संपन्नता की ओर इतना नहीं रहा, किंतु शिक्षा क्षेत्र में भारतीय देन अद्वितीय है। जब संसार की अन्य जातियां सभ्यता की बोली में केवल बड़बड़ाना ही सीख रही थी, भारत ने उच्च तत्वज्ञान की मीमांसा की | उसने अपनी सम्यता के एक मानदंड की स्थापना की। भारत के प्राचीन शिक्षकों ने शिक्षा के एक विशिष्ट रूप का विकास किया, जिसके द्वारा लौकिक और पारलौकिक अनुमूतियों के समन्वय की स्थापना हुई और इस प्रकार भारतवर्ष माननीय पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] आधर ग्रंथ : अंगुत्तर निकाय : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी, संस्करण 1958, सम्पादिक रिचर्ड मोरिस और एण्डमण्ड हार्डी, पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन, 1885--1900

[2] कथावस्तु : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, देवनागरी संस्करण 1961

[3] जातक : सम्पादिक, पफाउसबोल्ल, ट्रबनर एण्ड कं.लि., लंदन, 1877-96

[4] चुल्लवग्ग : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1956

[5] थेरगाथा : सम्पादक, एच. ओल्डेनवर्ग, पालि सोसायटी, लन्दन 1833, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1959

[6] थेरीगाथा : सम्पादक, आर. पिशेल, पालि सोसायटी, लन्दन 1833, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1959

[7] दीघनिकाय : सम्पादक, टी.डब्ल्यू. रीज रेविड्स और जे. इकारपेंटर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लंदन, 1890--1911, सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, देवनागरी संस्करण, 1958, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सारनाथ, 1936

[8] दीपवंश : सम्पादक, ओल्डेनबर्ग, लन्दन, 1879 ध्म्मपगद : सम्पादक, एस.एस. थेर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1914, अंग्रेजी अनुवाद, एपफ. , सेक्रेड कुक्स ऑपफ दी ईस्ट, जिल्द 10,भारतीय संस्करणद्ध दिल्ली 1965